दो पाटों के बीच में

बजरंगलाल

सृष्टि के प्रारंभ से अब तक दुनियॉ मे शासन प्रणाली के नाम पर राजतंत्र का ही सर्वाधिक प्रभाव रहा है। बहुत चिंतन मनन के बाद भी या तो कोई विकल्प दिखा नही या स्थापित नही हो पाया। राजतंत्र को बदला जाना चाहिये यह सभी महसूस करते थे। परिणाम स्वरूप पश्चिम मे राजतंत्र को हटाकर लोकतंत्र प्रणाली का विकास हुआ। किन्तु पूर्व के देशो मे राजतंत्र यथावत् चलता रहा। कालान्तर मे पूर्व के देशों ने राजतंत्र को हटाकर साम्यवाद की स्थापना की। यह बात सर्व सिद्ध हो चुको है कि राजतंत्र की अपेक्षा लोकतंत्र भी अच्छा है और साम्यवाद भी । राजतंत्र एक व्यक्ति की तानाशाही है जबकि साम्यवाद एक ग्रुप की तानाशाही है। किन्तु साम्यवाद लोकतंत्र से अच्छा न ही था न ही ह। पिछले वर्षों मे हुई साम्यवाद की विफलता ने तो यह पूरी तरह प्रमाणित भी कर दिया है।

दुनियॉ के दोनो राजनैतिक ध्रुव लोकतंत्र या साम्यवाद के प्रयोग में बिल्कुल स्पष्ट थे। किन्तु भारत इन दोनो विचाार धाराओ क बीच म फस गया। नेहरू जी सिद्धांत रूप से वामपंथी विचारो के निकट थे किन्तु व्यवहारिक रूप में वे पूरी तरह दक्षिण पंथी थे। विदित हो कि पश्चिम की संस्कृति, शासन प्रणाली और सभ्यता को ही लोकतंत्र, पूॅजीवाद या दक्षिण पंथ कहा जाने लगा और रूस चीन की संस्कृति या शासन प्रणाली को साम्यवाद या वामपंथ नाम मिला। समाजवाद वामपंथ के साथ ही जुड़ गया। इन दोना ही संस्कृतियो ने भारत के बुद्धिजीवियो का ब्रेनवाश करने क लिये कई हथकण्डो का प्रयोग किया। साहित्य पर अपनी पकड़ मजबूत करना भी उसमें से एक है। भारत के साहित्यकारों की सोच को किसी न किसी आधार पर प्रतिबद्ध किया गया। कितने दुख की बात ह कि हमारे देश के अनेक साहित्यकार अपनी स्वतंत्रता दो मे से एक विचार धारा के पास बंधक रखकर अपने नाम के आगे–पीछे ऐसे शब्द जोड़ने लगे जा यह बताते थे कि ये किसके पालतू साहित्यकार ह। स्वतंत्रता संघर्ष क काल म भी जहॉ स्वतंत्र साहित्य ने संघर्ष में अपनी सारी शक्ति झोक दी वहीं इन प्रतिबद्ध साहित्यकारों की भूमिका उस संघर्ष काल में नगण्य ही रही। स्वतंत्रता के बाद अवश्य ही दोना विचार धाराए पूरी तरह मैदान मे आकर अप्रतिबद्ध साहित्य के पीछे ढ़केलने मे सफल हो गई। उसी का यह परिणाम है कि आज साहित्य, साहित्य की शालीनता छोडकर मल्लयुद्ध के अखाड़े का उपयोग करने लगा है। हाल मे सम्पन्न विश्व हिन्दी सम्मेलन के संबंध मे कमलेश्वर जी की रिपोर्ट और कमलेश्वर जी क लेख पर दिये गये उत्तर से यह बात स्पष्ट होती है।

वामपंथ और दक्षिण पंथ दो अलग–अलग विचार धाराएँ हैं। दोनो के राजनैतिक उद्देश्य है। किसी का उद्दश्य सामाजिक नही है। दोना ही अपने राजनैतिक उद्दश्यों को स्थायित्व प्रदान करने के लिये उसे सामजिक स्वरूप प्रदान करते है और दोनो ही अपने इस कार्य के लिये साहित्य का उपयोग करते है। इस कार्य के लिये दोना ही पंथ साहित्यकारों की व्यवस्था करते हैं। दोनो विचार धाराआ का स्वरूप अलग–अलग होता है। वामपंथ ''सत्ता का केन्द्रीयकरण और विकेन्द्रीयकरण'' को अपनी विचार धारा मानता है तो दक्षिण पंथ सम्पति का ''केन्दोयकरण और सत्ता के विकेन्द्रीयकरण'' का पक्षधर है। वामपंथ हिन्दुओ को आदर्श की शिक्षा तथा मुसलमानों के साथ सहयोग करता है तो दक्षिण पंथ हिन्दुओ से सहयोग और मुसलमानों में भय पैदा करता है। वामपंथ मुसलमानो के पक्ष मे निर्लज्जता की सीमा तक झका होने के बाद भी स्वयं को धर्मनिरपेक्ष कहता है तो दक्षिण पंथ हिन्दू धर्म के मूल उद्दश्य सर्वधर्म समभाव तथा वसुधैव कुटुम्बकम को छोड़कर भी स्वयं को हिन्दू समर्थक घोषित करता है । दोनों अपने–अपने सिद्धान्तो को छोडकर भी सिद्धान्तवादी बने हुए ह।

वामपंथी स्वयं का धर्मनिरपेक्ष कहते है किन्तु समान नागरिक संहिता का विरोध करते हैं। म आज तक नहीं समझ सका कि कोई निरपेक्ष विचार धारा किसी धर्म विशेष के पक्ष मे किसी प्रकार के कानून की वकालत किस मह से करती है। मैने सुना है कि वामपंथ में विद्वानों की संख्या बहुतायत से है। ये वामपंथी विद्वान समान नागरिक संहिता Common civil code तथा समान आचरण संहिता Common code of conduct का अंतर क्यों नहीं समझता आचार संहिता किसी की व्यक्तिगत हो सकती है जिसके संबंध में शासन कोई कानून नहीं बना सकता किन्तु नागरिक संहिता तो सबके लिये समान होनी ही चाहिये। इसी तरह हमार दश के वामपंथी हिन्दू धर्म प्रचार को पूरी तरह पाखण्ड आर घातक मानते हैं किन्तु मुसलमानों द्वारा कराये जाने वाले धर्म परिवर्तन तक पर रोक के विरूद्ध हैं। भारत में किसी भी धर्म को स्वीकार करने, आचरण करने तथा विचार प्रसार करने की पूरी तरह छूट है और होनी भी चाहिये। किन्तु धर्म परिवर्तन करने के लिये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रेरित करने की किस सीमा तक छूट हो यह विवादास्पद है। भारत में हिन्दुओं ने इसे स्वप्रेरणा से अनैतिक माना और मुसलमाना ने इसे धम के आदेशानुसार पुण्य कार्य माना। हिन्दू कभी संगठन के स्वरूप में रहा ही नहीं जबकि इस्लाम का स्वरूप ही संगठन का रहा है। प्रश्न उठता है कि वामपंथ मुसलमानों द्वारा कराये जाने वाले धर्म परिवर्तन पर किसी तरह की कानूनी या सामाजिक सीमा रेखा का एक पक्षीय विरोध करते रहने के बाद भी स्वयं को किस मुॅह से धर्मनिरपेक्ष कहता है? बाबरी मस्जिद विध्वंस के मामले में विरोध का नेतृत्व करने वाले वामपंथी बुद्ध प्रतिमा खंडन, अक्षरधाम मंदिर या कश्मीर के मंदिरों पर आकमण के समय चुप क्यों हो जाते हैं। दक्षिणपंथी किसी मंदिर का मुसलमानों के विरूद्ध हथियार इकट्ठा करने हेतू उपयोग करें तो अनेक हिन्दू इसे धर्म विरूद्ध कार्य घोषित करते हैं किन्तु मुसलमान यदि मस्जिद में शस्त्र रखें तब भी हमारे मुसलमानों की बात छोड दीजिये, धर्म निरपेक्ष लोग भी कुछ नहीं कहते। हिन्दुओं में फैली कुरीतियों के विरूद्ध जम कर प्रचार करने वाले वामपंथी मुसलमानों की एक पक्षीय तलाक जैसी गंभीर बुराई के संबंध में चुप रहते हैं। मैंने अपने पिछले लेख में अयोध्या मंदिर मुद्दे का एक हल सुझाया था कि भारत के सभी स्थानों के मामले में सन् संतालिस को आधार मानकर अयोध्या में मस्जिद स्वीकार कर ली जाये। साथ ही भारत में समान नागरिक संहिता तथा धर्म परिवर्तन कराने के प्रयास पर रोक के कानून भी बना दिये जायें। मुझे इस संबध में हिन्दुओ और मुसलमानों का कम विरोध मिला किन्तु वामपंथियों ने इस सुझाव का अधिक विरोध किया। मैं महसूस करता हूॅ कि वामपंथियों ने धर्मनिरपेक्षता के विरूद्ध आचरण करते हुए धर्मनिरपेक्ष शब्द को ढाल के रूप में उपयोग किया।

इस संबंध में दक्षिण पंथियों की स्थिति भी कम दोषपूर्ण नहीं रही। दक्षिणपंथियों ने हिन्दू मान्यताओं, परम्पराओ तथा संस्कृति को पूरी तरह गलत दिशा दी है। मुसलमानों के दारूल इस्लाम के षडयंत्र को भारत में विफल करने के लिये समान नागरिक संहिता तथा धर्म परिवर्तन कराने के प्रयासा पर प्रतिबंध के कानून पर्याप्त प्रभावकारी हो सकते थे किन्तु इन्होंने इन दोनों वैचारिक मुद्दों पर कम तथा मंदिर अथवा त्रिशूल जैसे भावनात्मक मुद्दों पर अधिक जोर दिया। दक्षिणपंथियों ने हिन्दू धर्म को संगठन का स्वरूप देने का प्रयास किया जबकि यह प्रमाणित हो चुका है कि संगठन मजबूत से सुरक्षा और कमजोरों के शोषण का पर्याय बन चुके हैं। संगठन अपनत्व को प्रोत्साहित करते तथा न्याय का गला घोट देते हैं। संगठन वर्ग–संघर्ष को भी बढाते हैं, घटाते नहीं। संगठन शक्ति पर विश्वास करते हैं, तर्क पर नहीं। दक्षिणपंथियों को यह सोचना चाहिये था कि हिन्दू कभी न संगठन बना है न ही उसे बनना चाहिय। किन्तु हमारे दक्षिण पंथी हिन्दुओं को संगठित करने में दिन रात लगे हुए हैं।

इराक को अमेरिकी आक्रमण झेलना पडा। सद्दाम की अमानवीय तानाशाही का विरोध होना चाहिये था किन्तु नहीं हुआ। अमेरिका द्वारा इराक पर आक्रमण अनैतिक था। उसका वैचारिक विरोध होना चाहिये था। किन्तु नहीं हुआ। वामपंथियों ने विरोध किया किन्तु वह वैचारिक विरोध की सीमा रेखा से आगे जाकर पेशेवर विरोध में बदल गया। ऐसा विरोध हुआ जैसे कुछ लोगों को अमेरिका का विरोध करने का बहाना मिल गया हो। सभी वामपंथी साहित्यकार एकाएक सब काम छोडकर सिर्फ एक ही सूत्र में लग गये। लेख आते वहॉ तक तो सीमा ठीक थी किन्तु जुलूस और मानवश्रखला तक बनने

लगी। दूसरी ओर दक्षिणपंथियों न वैचारिक विरोध भी नहीं किया। अनेक तथाकथित हिन्दू तो यहॉ तक कहते सुने गये कि, चलो अच्छा हुआ, कुछ तो मुसलमान कम होंगे। अमेरिका की साम्राज्यवादी नीतियों का वैचारिक विरोध भी इन लोगों ने नहीं किया, जो होना चाहिये था।

वामपंथ की अर्थनीति भी बहुत विचित्र है। दक्षिणपंथी तो स्पष्ट रूप से पूॅजीवादी तथा बड उद्योग धंधों के पक्षधर हैं। इन्हें न लघु उधोगों की चिन्ता है न आर्थिक असमानता की किन्तु वामपंथी तो इस संबंध में पूरी तरह दोहरा चरित्र रखते हैं। ये लोग उन वस्तुओं पर कर का विरोध नहीं करते जिनका गरीब लोग अधिक और अमीर लोग कम उपयोग करते हैं किन्तु उन वस्तुओं पर कर का भारी विरोध करतें हैं जिनका बडे लोग अधिक आर गरीब लोग कम उपयोग करते हैं। टेलीफोन, कृत्रिम उर्जा, अखबार, आवागमन आदि को सस्ता करने के पीछे ये लोग इतनी ताकत लगाते है कि धीरे–धीरे ये वस्तुऍ आम उपयोग की वस्तु का रूप ग्रहण करने लगी है किन्तु खाद्यान्न, खाद्यतेल, कपडा दवा और साइकिल पर भारी करों का ये लोग वैसा विरोध नहीं करते। परिणाम स्वरूप भारत में पूॅजीवादी उपभोक्ता वाद बढ रहा है। किन्तु ये वामपंथी अपनी अर्थनीति पर पुनः विचार तक करने को तैयार नहीं। ये वामपंथी श्रम का मूल्य बढवा बढवा कर श्रम की मांग कम करते जाते हैं दूसरी ओर कृत्रिम उर्जा को सस्ता रखवा कर उसकी मांग में वृद्धि के अवसर पैदा करते हैं। श्रम और कृत्रिम उर्जा के बीच संतुलन बिगड जाता है। ये लोग मुद्रा स्फीति को महंगाई कह कर आर्थिक असमानता पर से भी ध्यान हटाते हैं और महंगाई का भी अनावश्यक भय पैदा करते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से अर्थनीति में वामपंथी अप्रत्यक्ष और दक्षिणपंथी प्रत्यक्ष रूप से श्रम विरोधी, आर्थिक असमानता के पोषक, लघु उद्योगों के समाप्त कर्ता के रूप में सहायक हो रहे हैं।

वामपंथी और दक्षिणपंथी दोनों का स्वरूप संगठन का है, संस्था का नहीं। कठोर अनुशासन का पालन होता है, अधिकांश विचार मंथन गुप्त होता है, साहित्य का अपने हित में उपयोग होता है, सत्ता के साथ तालमेल करने का पूरा पूरा प्रयास होता है, दुहरा चरित्र होता है। विचारों के स्थान पर भावनाओं को अधिक महत्व देते है तथा हिंसा का अहिंसा पर अधिक महत्व देते हैं। वामपंथियों ने धर्म निरपेक्ष शब्द का भरपूर शोषण किया है और दक्षिणपंथियों ने समान नागरिक संहिता का। धर्म निरपेक्ष व्यवस्था में अल्प संख्यक शब्द और ऐसी भावना स्वयं ही बेइमानी है। साथ ही समान नागरिक संहिता के साथ–साथ हिन्दू राष्ट्र जैस शब्द और भावना का प्रचार भी कोई समझकर व्यक्ति तो नहीं कर सकता। भारत की शान्ति व्यवस्था, न्याय और कानून दो पाटों के बीच में पिसकर लहूलुहान हो रही हैं फिर भी ये दोनों राष्ट्र भक्ति का झंडा उठाने में सबसे आगे दिखाई देत हैं।

केन्द्रीयकरण एक समस्या है जिसका समाधान विकेन्द्रीयकरण बताया जाता है जो वास्तव में है नहीं। इसका समाधान है अकेन्द्रीयकरण। केन्द्रीयकरण में धन या सत्ता कुछ लोगों तक सिमट जाती है विकेन्द्रीयकरण में धन और सत्ता इकट्ठे होकर अन्य लोगो में बंट जाते है तथा अकेन्द्रीयकरण में न धन इकट्ठा होगा न सत्ता। जब इकट्ठा ही नहीं होगा तो बंटन का कोई प्रश्न ही नहीं रहता है।

जब किसी इकाई के अधिकार किसी बहुत ऊपर की इकाई के पास चले जाते है उसे केन्द्रीयकरण कहते है और जब ऐसे अधिकारों को उक्त केन्द्रित इकाई उसके मूल अधिकारी को छोडकर किसी अन्य को वापस करती है तो उसे विकेन्द्रीयकरण कहते है किन्तु यदि उक्त अधिकार उसकी मूल इकाई को ही वापस हो जावे तो उसे अकेन्द्रीयकरण कहते है। व्यक्ति को अपना व्यक्तिगत जीवन, परिवार को अपनी पारिवारिक व्यवस्था गॉव को अपनी गॉव संबंधी व्यवस्था का दायित्व यदि केन्द्र सरकार को है तो वह केन्द्रीयकरण है और यदि केन्द्र सरकार उक्त अधिकार राज्य सरकार अथवा ग्राम पंचायत को सौंपती है तो यह सत्ता का विकेन्द्रीयकरण हुआ। अकेन्द्रीयकरण तो तभी होगा जब ग्राम पंचायत को अधिकार गॉव के लोग स्वेच्छा से सौंपना चाहें तो सौंपे। इसी तरह अर्थ भी यदि केन्द्र के पास इकट्ठा हो और केन्द्र खर्च करें तो केन्द्रीयकरण, यदि केन्द्र इकट्ठा करे और राज्यों या पंचायतों को दे तो विकेन्दोयकरण और यदि गाव के लोग अपनी आवश्यकतानुसार इकट्ठा करें और खर्च करें तो अकेन्द्रीयकरण होगा। हम वामपंथियों और दक्षिणपंथियों के सत्ता लोलुप नारों में उलझ कर केन्द्रीयकरण और विकेन्द्रीयकरण तक सिमट गये हैं। हमें यदि सुरक्षित रहना है तो हमें इन दो पाटों के बीच से सुरक्षित बाहर निकलने का मार्ग तलाशना चाहिये।

प्रश्नोत्तर

श्री एम. एस. सिंगला, बैंक कालोनी, नाका मदार, अजमेर ।

मैंने भारद्वाज जी लिखित पुस्तक Democracy on dialisis. What next ? पूरी पढ़ी। ज्ञान तत्व अंक चौंसठ भी पढ़ा। अहिंसा समाज में चल सकती है किन्तु शासन में नहीं। अहिसा के प्रयोग के लिये जिस धैर्य, हिम्मत और सहनशीलता की आवश्यकता है, यदि उसमें कमी है तो परिणाम विपरीत होंगे। कांग्रेस पार्टी ने कभी गांधी की नीतियों का अनुसरण नहीं किया। उसने तो सिर्फ गांधी के नाम का अपने स्वार्थो के लिये उपयोग किया।

आपने गांधी हत्या को कायराना हमला लिखा। ऐसा लिखना आजकल नेताओं का फैशन है। जब कोई व्यक्ति तर्क से नहीं समझा पाता और हठ पर उतर जाता है तो क्या इसे अहिंसा की श्रेणी में रखा जावे? जब गांधी जी ने पाकिस्तान के निर्माण के समय अनशन नहीं किया तो पचपन करोड़ के लिये ही क्यों किया। यह अनशन उनकी हिंसा के समान था। आज भी हमारे राजनेता गलत नीतियों पर चल रहे है। ऐसी स्थिति में क्या अहिंसक मार्ग आकाशफूल के समान असंभव नहीं है? अपने समय के राम और कृष्ण को भी हिंसा का सहारा लेना पड़ा था। हिन्दुओं के सभी देवी देवता कमल के साथ साथ शस्त्र भी रखते थे। आप गंभीरता से विचार करें कि हिन्दू अहिंसा की बात भी करते है और अहिंसा को परम धर्म भी मानते हैं। ऐसी मान्यता क्या ईसाइयों और मुसलमानों की भी है? अतः एकपक्षीय अहिंसा की वकालत करना हानिकर प्रतीत होता है।

उत्तरः— मैं आपकी इस बात से सहमत हूॅ कि अहिंसा समाज म चलनी चाहिये व्यवस्था में नहीं। शासन को न्याय और सुरक्षा के लिये आवश्यकतानुसार बल प्रयोग करने की छूट होनी चाहिये किन्तु ऐसी हिंसा व्यवस्था के दायरे के बाहर न हो। कांग्रेस पार्टी ने गांधी का उपयोग स्वार्थ से किया या नेकनीयती से यह बहस का विषय है और मरे लिये इस बहस का कोई उपयोग नहीं। गांधी जी ने अपने कथन पर जोर देने के लिये तर्को की जगह अनशन का सहारा लिया और चूॅकि यह भी एक प्रकार की परोक्ष हिंसा ही थी अतः गोडसे का गोली मारना कोई गलत नहीं था इस तर्क से मैं अब भी सहमत नहीं। कोई व्यक्ति किसी उॅचे पद पर बैठा है और किसी व्यक्ति या व्यक्तियों की दृष्टि में उस पदासीन व्यक्ति का कार्य गलत हो तो क्या उस व्यक्ति को या व्यक्तियों को अपना निर्णय अन्तिम मानने और उस निर्णय को कार्यान्वित करने की छूट होनी चाहिये? यदि आप ऐसी छूट के पक्ष में हैं तो मैं नहीं समझता कि आप तर्कपूर्ण उत्तर दे रहे हैं। गोडसे द्धारा की गई हिंसा सामाजिक हिंसा थी क्योंकि गोडसे को ऐसा करने का न समाज ने अधिकार दिया था न व्यवस्था ने। गांधी का सोच गलत था या सही यह विवाद का विषय हो सकता है किन्तु गोडसे का कार्य गलत था यह विवाद का विषय नहीं। मुझे लगता है कि कई बार गांधी विचारों का विरोध करते करते हम लोग गोडसे का अप्रत्यक्ष समर्थन करने लगते है जो बिल्कुल ही तर्कहीन भी है और औचित्य हीन भी ।

आपने अपने पत्र में राणा सांगा, महाराणा प्रताप आर लक्ष्मी बाई का उदाहरण दिया। मैं नहीं समझता कि किसी ने भी गोडसे के समान कायरता का कार्य किया हो। अतः गोडसे जैसी प्रवृत्ति की निरंतर निन्दा ही की जानी चाहिये।

आपने हिन्दुओं मुसलमाना और इसाईयों की हिंसक मनोवृत्ति के समक्ष हिन्दुओं की अहिंसक मनोवृत्ति को धातक बताया है और अहिंसा को छोड़ने की वकालत की है। आपने उपर में सामाजिक अहिंसा का पक्ष लिया और व्यवस्था को बल प्रयोग की अनुमति दी। अब आप बताइये कि आप मुसलमानों और इसाईयों की हिंसक मनोवृत्ति को रोकने हेतु शासन को बल प्रयोग की सलाह दे रहें हैं या समाज को। यदि शासन को यह सलाह है तो वह सिर्फ मुसलमानों और इसाइयों की हिंसक मनोवृत्ति तक ही सीमित हो या उस प्रत्येक व्यक्ति पर लागू हो जो अनावश्यक हिंसा का उपयोग करता हो? मुसलमान और इसाई हिंसा के पक्षधर हैं। ऐसी स्थिति में हिन्दुओं को भी हिंसक हो जाना चाहिये अथवा मुसलमानों और इसाइयों की हिंसक मनोवृत्ति पर प्रजातांत्रिक तरीके से प्रतिबंध लगा देना अच्छा है? मेरे विचार में भारत में ऐसी कोई स्थिति नहीं है कि संवेधानिक परिवर्तनों द्धारा मुसलमानों और इसाइयों की हिंसक प्रवृत्ति पर रोक न लग सके। इसाइयों पर तो वैसे भी ऐसा आरोप नहीं है। जहॉ तक मुसलमानों की बात है तो उनक सोच में बदलाव लाना कठिन नहीं। अतः मेरा आपसे निवेदन है आप भावनाओं में बहकर हिन्दुओ को हिंसक होने की सलाह न दें। राम और कृष्ण ने जिन स्थितियों में सहारा लिया उस उदाहरण का लाभ उठाकर हिंसा की वकालत करना वैसा ही प्रयास माना जायेगा जैसा गॉधी के नाम का दुरूपयोग कांग्रेस द्धारा किये जाने का आरोप लगता है।

मैं अब भी इस मत का हूॅ कि गोडसे का कार्य कायराना था, हिन्दू मान्यताओं के विपरीत था तथा देश क लिये कभी आदर्श नहीं बन सकता। इसी तरह मेरा यह मत है कि मुसलमानों की हिंसक मनोवृत्ति पर संवधानिक रोकथाम का उपाय करने की पहल की जानी चाहिये किन्तु किसी भी स्थिति में मुसलमानों के विरूद्ध हिन्दुओं में हिंसा का जहर नहीं घोलना चाहिये। समाज में हिंसक मनोवृत्ति के प्रचार प्रसार का परिणाम न कभी पहले अच्छा रहा है न ही भविष्य में रहेगा।

02. श्री आर्य भूषण जी भरद्वाज, भजनपुरा, नई दिल्ली

ज्ञान तत्व के उपर लिखा हुआ है "सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक"। इस वाक्य में सत्यता और निर्भीकता की तो बात समझ में आती है किन्तु निष्पक्षता की बात आप कैसे लिख सकते हैं। आप निरंतर सत्य का पक्ष लेते आए हैं और आपने लिखा भी हैं। जब आप सत्य का पक्ष लेकर असत्य का विरोध करते हैं तो आपको निष्पक्ष शब्द नहीं लिखना चाहिये।

उत्तर :—आपने जो प्रश्न किया है वह अत्यन्त ही गंभीर भी है और जटिल भी। समाज में दो शब्द बहुत महत्व के हैं पहला न्याय दूसरा अपनत्व। न्याय का समर्थन और सहयोग तथा अपराध या अन्याय का विरोध किसी भी दृष्टिकोण से पक्षपात की श्रेणी में नहीं आता है। वह तो हमारा या तो दायित्व है या कम से कम कर्तव्य तो है ही। किन्तु यदि हम न्याय का पक्ष छोड़कर अपनत्व के पक्ष में झुकते ह तब हमारी निष्पक्षता प्रभावित होती है। अपनत्व चाहे पारिवारिक हो या धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा ,उम्र, लिंग, आर्थिक स्थिति अथवा किसी अन्य ऐसे आधार पर जिसमें न्याय प्रभावित होता हो। मेरे विचार में सत्य का पक्ष लेना पक्षपात नहीं कहा जाना चाहिये बल्कि सत्य के अतिरिक्त किसी और आधार पर पक्ष लेना पक्षपात में मानना चाहिये। फिर भी मैं अपने उत्तर से पूरी तरह संतुष्ट नहीं हूॅ तथा आगे और विचार की आवश्यकता है।

आपकी लिखी पुस्तक DEMOCRACY ON DIALISIS WHAT NEXT ? पूर भारत में बहुत पसन्द की गई है। मेरे पास भी कई पत्र आये हैं। आपने भी डॉ0 मुरली मनोहर जोशी, सोनिया जी, अटल जी, कुमारप्पा इंस्टीटयूट जयपुर, इम्फाल से निशिकान्त शर्मा, जयपुर से एम0एस0 सिंगला आदि के विचार या संदेशों की फोटो कापी भिजवाई। इससे पुस्तक की उपादेयता प्रमाणित होती है। आशा है कि लोकतंत्र बनाम लोकस्वराज्य में पुस्तक बहुत सहायक होगी।

03.श्री आदित्य प्रताप सिंह, जर्नादन कालोनी, रीवां, मध्यप्रदेश

ज्ञान तत्व अंक 65 पढ़ा। ज्ञान तत्व में वस्तुगत, स्वतंत्र चिन्तन के सकर्मक स्फुलिंग मिलते है। अंध द्वंद्वात्मक, सर्व श्रय यूरो, हीगल, मार्क्स का चिन्तन है जो समाज को वर्ग विहीन समाज में नहीं बल्कि मुर्दो के मरघट में बदल देता है। इसके वरअक्स गाधी का समन्वय का सिद्धांत हैं। अब जेहाद, कुशेड, वर्ग और वर्ग संघर्ष के हथियार पुराने पड़ गये है। अब तो दुराग्रह मुक्त सत्यदर्शी संघर्ष युक्त सर्वप्रकर्ष सर्वोदय चाहिये। जो इंजन बिगड जाता वह सहायक न होकर बाधक बन जाता है। ऐसी यथा स्थिति का पाषाण तोड़ने हेतु बजरंग के हथौड़े की आवश्यकता है। अभी अमेरिकी कार्टून में गांधी को पीटते हुए दिखाया गया। अभी वागर्थ (कलकत्ता) पत्रिका में कमला पांडे ने गांधी का मजाक उड़ाया। कहने को तो ये साम्यवादी हैं किन्तु हैं पूॅजीवादी, डालर के पिछलग्गू, मार्क्स का मुखौटा लगाये रेड फासिस्ट, जो सर्वहारा को सर्वहारा बनाये रखना चाहते हैं क्योंकि सर्वहारा का अस्तित्व बने रहना ही इन सबके अस्तित्व की गारंटी है।

04. श्री जगपाल सिंह जी, मेरठ, उत्तर प्रदेश।

आर्यभूषण जी लिखित पुस्तक को भी बहुत ध्यान से पढ़ा और ज्ञान तत्व का अंक चौंसठ भी। अंक चौसठ में एक नारा छपा है लोक स्वराज्य अपनाइये लोकतंत्र से मुक्ति पाइये। पत्रिका में और भी कई जगह लोकतंत्र के विकल्प के रूप में लोक स्वराज्य प्रणाली को प्रस्तुत किया गया है। लोकतंत्र का अर्थ है जनता द्वारा, जनता के लिये, जनता की सरकार। इस व्यवस्था से अच्छी अब तक न कोई व्यवस्था है न हो सकती है। हम भले ही काल्पनिक व्यवस्था चाहे जो भी क्यों न बना ले। भारतीय शासन व्यवस्था लोकतत्र है ही नहीं जो इसे बदला जावे।

आपने लिखा कि लोक स्वराज्य प्रणाली का पहला प्रयोग रामानुजगंज नगर पंचायत में सफल रहा है। आपके इस दावे से तो मैं और भी भ्रमित और गुमराह हो गया हूॅ। इस भ्रम को दूर करने हेतु आप कुछ विस्तार से उत्तर दें –

लोकतंत्र और लोक स्वराज्य शासन व्यवस्थाओं के मूल सिद्धांत तथा अन्तर क्या है?

02. लोकतत्र और लोक स्वराज्य शासन की संरचना और उसके अन्तर क्या है?
03. दोनों की निर्वाचन पद्धतियों में क्या अन्तर हैं?
04. लोक स्वराज्य प्रणाली लोकतंत्र से अच्छी क्यों हैं? प्रयोग सहित लिखिये?

उत्तरः—मैं आपसे सहमत हूँ कि वर्तमान शासन पद्धतियों म लोकतंत्र सबसे अच्छी प्रणाली है किन्तु मैं इस बात से सहमत नहीं कि यह अंतिम प्रणाली है और इससे अच्छी कोई प्रणाली भविष्य में भी नहीं हो सकती। मैं यह भी मानता हूँ कि भारत में वर्तमान शासन प्रणाली को लोकतंत्र नहीं कहना अधिक अच्छा है क्योंकि यह तो लोकतंत्र का विकृत स्वरूप ही है। किन्तु मैं यह भी मानता हूँ कि आदर्श लोकतंत्र कहे जाने वाले अमेरिका और ब्रिटेन भी लोकतंत्र के दष्परिणामों से बच नहीं पर रहे। पूरी दुनियॉ में शस्त्र व्यवसाय के बल पर आर्थिक शक्ति इकटठी करने का प्रयत्न, लोकतंत्र के नाम पर पूँजीवाद की स्थापना तथा पूरे विश्व पर सहमति के स्थान पर धन और शक्ति के आधार पर वर्चस्व स्थापित करने की इच्छाओं ने प्रमाणित किया है कि लोकतंत्र का विकल्प अवश्य खोजा जाना चाहिये। सौभाग्य से हमें लोक स्वराज्य प्रणाली के रूप में वह विकल्प उपलब्ध हुआ है।

लोकतंत्र का अर्थ है ''जनता के लिय, जनता द्वारा तथा जनता की सरकार'' लोक स्वराज्य का अर्थ है ''प्रत्येक इकाई को उसके इकाईगत निर्णय की स्वतंत्रता। लोकतत्र में जनता अपने बनाये गये संविधान के अन्तर्गत काम करने के लिये एक Custodian चुनती है जिसे जनहित के किसी भी मामल में किसी भी सीमा तक कानून बनाने तथा उस कार्यान्वित करने का अधिकार होता है जबकि लोक स्वराज्य पद्धति में जनता अपना एक ऐसा मैनेजर चुनती है जिसे उतने ही अधिकार होते हैं जितने, जनता उसे समय समय पर द। लोकतंत्र में जनहित की परिभाषा शासन तय करता है जिसमें कार्यपालिका, न्याय पालिका और विधायिका सम्मिलित हैं। लोक स्वराज्य प्रणाली में इकाई अपने हित की परिभाषा स्वयं तय करती है। यहॉ तक कि व्यक्ति के व्यक्तिगत हित में पूरी जनता भी उसकी सहमति के बिना कोई कटौती नहीं कर सकती। लोकतंत्र में लोक और तंत्र एक दूसरे के साथ समन्वय करते है जबकि लोक स्वराज्य में तंत्र की भूमिका नगण्य रहती है।

लोकतंत्र और लोक स्वराज्य प्रणालिया की संरचना भी भिन्न भिन्न है। लोकतंत्र में व्यक्ति अपने वोट के साथ ही अपने सभी अधिकार (मूल अधिकार छोड़कर) सत्ता को सौंप देता है जिसे सत्ता आवश्यकतानुसार नीचे की इकाईयों में विकेन्द्रित करती है। लोक स्वराज्य में न्याय, सुरक्षा, वित्त और विदेश संबंधी कार्य तो शासन के पास रहते हैं। शेष अधिकार क्रम से नीचे से उपर आवश्यकतानुसार दिय जाते हैं। जैसे विवाह की उम्र क्या हो यह शासन को तय करने का पूरा अधिकार है। इसमें व्यक्ति, परिवार, गॉव, जिला और प्रान्त में से किसी की कोई भूमिका नहीं। लोक स्वराज्य में विवाह की उम्र यदि गॉव के लोग मिलकर तय करना चाहें तो स्वयं ही तय कर सकते हैं अन्यथा यह अधिकार किसी ऊपर की इकाई का तय करने का अधिकार दे सकते ह। यदि किसी गॉव के लोग सर्व सम्मति अथवा सर्वसम्मति से स्वीकृति बहुमत के आधार पर तय कर लें कि अपने गॉव की सुरक्षा हम स्वयं कर लेगे तो शासन तब तक उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता जब तक कोई व्यक्ति इसके विरूद्ध मॉग न करे। लोकतंत्र में केन्द्र सरकार और राज्य सरकार के बीच सत्ता के विभिन्न विभागों का विभाजन होता है। लोक स्वराज्य में सत्ता के पास सिर्फ पांच विभाग होंगे– पुलिस, सेना, वित्त, न्याय और विदेश। अन्य सारे विभाग व्यक्ति, परिवार, गॉव, जिला, प्रदेश और केन्द्र सभाओं के पास इस सीमा तक रहेंगे कि नीचे की इकाई उन्हें दे। लोकतंत्र में चुने हुए लोग सबकी चिन्ता करेंगे। लोकस्वराज्य में सिर्फ अपनी चिन्ता तक करने की सीमा है यदि दूसरी इकाई आपको अपने विषय में चिन्ता करने का अधिकार न दे। लोकतंत्र में सभी तत्र ऊपर से बनते है। चुनाव सीधा होता है। लोक स्वराज्य में पांच अधिकार वाली सरकार को छोड़कर शेष सारे चुनाव नीचे से एक एक सीढ़ी पर होते हैं। लोकतंत्र में चुनाव का बहुत महत्व है क्योंकि चुने गये व्यक्ति और सामान्य नागरिक के बीच अधिकारों में भारी असमानता होती है जबकि लोक स्वराज्य में चुनावों का बहुत कम महत्व हैं क्योंकि अधिकारों का फर्क बहुत कम होता है। लोकतंत्र में चुनावों में जीतना सम्मान और शक्ति का प्रतीक माना जाता है किन्तु लोक स्वराज्य में ऐसा नहीं होगा। लोकतंत्र में शक्ति और सम्मान की मात्रा चुने हुए व्यक्ति के पास अधिक होने से चुनाव सुधारों की बहुत आवश्यकता है किन्तु लोक स्वराज्य प्रणाली के बाद चुनाव सुधारों की चर्चा बेकार हो जायगी क्योंकि लोग सांसद बहुत कम बनने की इच्छा रखेंगे और समझा बुझाकर ही सांसद बनाने पड़ेगे। लोक स्वराज्य प्रणाली लागू होने के बाद किसी कार्य के परिणाम से प्रभावित इकाई और कर्ता के बीच दूरी समाप्त हो जाने से कार्य की गुणवत्ता बहुत बढ़ जायेगी। यह दूरी शून्य या न्यूनतम होने से भ्रष्टाचार न्यूनतम हो जायेगा। आम लोगों में निर्णय करने की शक्ति जागृत होगी। शासक और शासित का भेट भी समाप्त होगा और गुलाम मानसिकता नहीं रहेगी केन्द्र सरकार के पास सिर्फ पांच ही दायित्व होने से उसकी कार्य क्षमता बढ़ेगी। न्यायालयों में मुकदमें अपने आप बहुत कम हो जायेंगे क्योकि जुआ, शराब, गांजा, छुआछूत, आदिवासी, हरिजन, पिछड़े वर्ग, अनाज, कत्था ब्लक, तस्करी आदि हजारों कानून या तो समाप्त हो जावेंगे या सरकारी हस्तक्षेप से दूर होकर गॉव के पास हो जावेंगे। इनमें न पुलिस का कोई हस्तक्षेप होगा न ही न्यायालय का। सत्ता मुक्त व्यवस्था का हमारा पुराना सपना लोक स्वराज्य व्यवस्था से पूरा हो सकेगा।

रामानुजगंज नगरपंचायत व्यवस्था में साढ़े तीन वर्षो तक इस व्यवस्था का परीक्षण किया गया। चमत्कारिक परिणाम हुए जिसका विस्तृत विवरण पूर्व में गया है। इससे उत्साहित होकर ही मैंने इस संबंध में प्रमुख लोगों स व्यापक विचार विमर्श के बाद यह घोषणा की है कि लोक स्वराज्य प्रणाली भारत में तो लोकतंत्र का विकल्प है ही, विश्व में भी बन सकती है। भारत में वर्तमान समय में जो कुछ दिख रहा है वह विकृत लोकतंत्र है किन्तु यदि यहॉ आदर्श लोकतंत्र भी रहा होता तो स्थिति अमेरिका और ब्रिटेन से तो अधिक अच्छी नहीं होती। अतः भारत की वर्तमान स्थितियों के लिये विकृत लोकतंत्र तो जिम्मेदार है ही, आदर्श लोकतंत्र भी कम जिम्मेदार नहीं। सन् सैंतालोस में हमने विकृत लोकतंत्र नहीं अपनाया था फिर भी धीरे धीरे हमारा आदर्श लोकतंत्र विकारग्रस्त होता गया और आगे भी कोई अच्छे लक्षण नहीं है। अतः लोकतत्र के स्थान पर लोक स्वराज्य पद्धति की आवश्यकता है।

जो लोग चुनाव सुधारों की जोरदार हिमायत करते है मैं उनके खिलाफ नही। वे कम से कम इतना तो कर रहे है कि लोकतंत्र की विकृतियॉ दूर हों। फिर भी मैं चुनाव सुधारों से दो चार प्रतिशत ही सुधार की उम्मीद रखता हूँ। अतः मैं अपनी शक्ति इस कसरत में खर्च नहीं कर रहा। मैं तो समस्या की जड़ पर परिवर्तन के प्रयास में हूँ और मुझे विश्वास है कि आगामी कुछ वर्ष निर्णायक सिद्ध होंगे।

05,श्री राम अवधेश मिश्र, बरेली, उत्तर प्रदेश।

प्रश्न—बहुत कम शब्दों मे लोक स्वराज्य, आदर्श लोकतंत्र, विकृत लोकतंत्र तथा तानाशाही का अन्तर स्पष्ट करें?

उत्तर—विषय के हिसाब से कम शब्दों में उत्तर कठिन है। फिर भी जगपाल जी के उत्तर में कुछ बातें आ चुकी हैं। अतः मैं कम शब्दों में बताने का पयास कर रहा हूँ।

तानाशाही —व्यवस्था के सम्पूर्ण अधिकार, दायित्व तथा हस्तक्षेप एक व्यक्ति के पास केन्द्रित हो।

साम्यवाद—व्यवस्था के सम्पूर्ण अधिकार, दायित्व तथा हस्तक्षेप एक गुट के पास केन्द्रित हो।

लोकतंत्र — सम्पूर्ण अधिकार, दायित्व तथा हस्तक्षेप आम नागरिकों द्वारा बनाये गये संवधानिक व्यवस्था के पास केन्द्रित हो।

विकृत लोकतंत्र — अधिकतम अधिकार, अधिकतम दायित्व तथा अधिकतम हस्तक्षेप संवैधानिक व्यवस्था के पास केन्द्रित हो। भारत में अभी ऐसी ही स्थिति है।

आदर्श लोकतंत्र – न्यूनतम दायित्व तथा न्यूनतम हस्तक्षेप हो किन्तु अधिकार अधिकतम हो। जैसा कि पश्चिमी देशों में है।

लोक स्वराज्य :– न्यूनतम दायित्व, न्यूनतम हस्तक्षेप तथा न्यूनतम अधिकार ही व्यवस्था के पास हों। अन्य दायित्व, हस्तक्षेप तथा अधिकार अपन मूल अधिकारी के पास चले जावें।

06.श्री तनवीर अहमद अन्सारी, जखौली, पटरंगा, फैजाबाद, उत्तरप्रदेश।

ज्ञान तत्व अक चौसठ मिला। मुस्लिम साम्प्रदायिकता पर आपक विचार अच्छे लगे कुछ कट्टरपंथियों के गैर इस्लामी कायो ने इस्लाम को बदनाम कर दिया है। चाहे तालिबान हो या सद्धाम या अरब जगत के हुक्मरान ये सभी कुछ भी गैर जिम्मेदारी का काम करके मजहब को नुकसान कर रहे हैं। अच्छा हो कि सभी धर्मनिरपेक्ष लोग धार्मिक कटटरवाद के विरूद्ध एक जुट हो जावें।

उत्तर– कट्टरवाद के विरूद्ध आवाज उठाकर आपने बहुत हिम्मत का काम किया है। मुसलमानों में ऐसे लोगों की बहुत बड़ी संख्या है जो शान्ति और सौहार्द को पसंद करते हैं किन्तु ऐसे लोग कट्टरवादिया के भय से चुप रहते हैं। आपने चुप्पी तोड़ी है। ऐसे और भी लोगों को सामने आकर कट्टरवादी मुसलमानों तथा संघ परिवार के तत्वों का एक जुट विरोध करना चाहिये। याद रखिये कि कट्टरवादी मुसलमानों का एक पक्षीय विरोध आपको भी उसी तरह अलग थलग कर सकता है जिस तरह वर्तमान धर्मनिरपेक्षा का एक पक्षीय हिन्दू विरोध। अतः बहुत सतर्कता से सिर्फ कट्टरवाद का विरोध करना चाहिये इस्लाम का नहीं। अन्यथा लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होगी। आपसे यह भी निवेदन है कि आप समय समय पर मेरी इस्लाम विरोधी टिप्पणी पर भी विरोध व्यक्त करें यदि आपको तर्कपूर्ण दिखती हों।

07. स्वामी मुम्तानंद जी, मेरठ, उत्तरप्रदश।

वर्तमान व्यवस्था का आधार विकास की वह परिभाषा है जिसमें भोग साधनों की प्रचुरता, शस्त्रनिर्माण की संग्रह क्षमता आदि को आधार बनाया गया है। इसी आधार पर विकसित, विकासशील, अर्द्ध विकसित, पिछड़ा आदि का वर्गीकरण हुआ। विकास की इस परिभाषा की मान्यता के कारण समाज में एक दूसरे से अधिक धन, सम्पदा तथा यश प्रभाव आदि क संग्रह की प्रतिस्पर्धा चल रही है। इस स्पर्धा के कारण शोषण और अपराध हरेक के जीवन का अनिवार्य अंग बनता जा रहा है। विकास की वर्तमान परिभाषा को बदले बिना व्यवस्था में थेंगली लगाने से यथास्थिति और मजबूत ही होगी। अतः विकास की वर्तमान परिभाषा को अमानवीय घोषित करके उसे बदलने की बहस चलनी चाहिये।

उत्तर– मैं आपके कथन से सहमत हूँ किन्तु आज संकट को ओर ठीक से समझने की आवश्यकता है। आर्थिक प्रतिस्पर्धा भी समस्याओं के विकास में एक कारण है किन्तु राजनैतिक प्रतिस्पर्धा के परिणाम अधिक घातक हो रहे हैं। राजनैतिक शक्ति क लिये सम्पूर्ण समाज में धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, उम्र, लिंग और आर्थिक स्थिति के आधार पर वर्ग विद्वश को बढ़ाकर वर्ग संघर्ष तक ले जाने का जानबूझ कर प्रयास विकास की गलत परिभाषा द्वारा नहीं किया जा रहा है। अतः प्राथमिकताएँ निर्धारित करने की आवश्यकता है। किसी नदी में डूब रहे व्यक्ति को बचाना एक काम है और उसके पानी से निकलते ही उसे अस्पताल पहुँचाने की पूर्व व्यवस्था दूसरा कार्य। दोनों ही काम महत्वपूण हैं। जो तैरना नहीं जानते उन्हें उसके बाद की चिन्ता अवश्य करनी चाहिये किन्तु जो डूबते को बचा सकते हैं वे पहल बाद वाली चिन्ता करें यह ठीक नही। मैंने स्वयं को तौल लिया है। मैंने चुनोती स्वीकार की है कि भारत में सत्ता के दुर्गुणों से मुक्ति हेतु गंभीर प्रयास करूँगा। आप अपनी शक्ति के आधार पर अपना निर्णय करें किन्तु मेरा आपसे निवेदन ह कि युद्ध भूमि में शंखनाद होने के बाद कोई भ्रम पैदा न करें। मैं आपका सहयोगी हूँ और यह काम पूरा होने के बाद आर्थिक समस्याओं पर आपका सहयोग करूंगा किन्तु अभी मैं ऐसी किसी बहस के लिये समय नहीं निकाल पा रहा।

8. श्री बुधमल शामसुखा, B14/158 सफदर जंग एन्क्लेव, नई दिल्ली।

ज्ञान तत्व का अंक पैंसठ मिला। पचपन वर्षो की प्रगति को मई माह की घटनाओं के साथ जोड़कर विश्लेषण बहुत सटीक है। श्री चन्द्रशेखर जी धर्माधिकारी का लेख भी गंभीर तथा तथ्यपूर्ण है। अब आप बिल्कुल ठीक दिशा में निष्कर्ष निकाल रहें हैं। सारी समस्याएँ वर्तमान व्यवस्था से पैदा हो नहीं रही है बल्कि पैदा की जा रही है। अतः सम्पूर्ण व्यवस्था परिवर्तन की आवश्यकता है। संविधान संशोधन के प्रयास व्यवस्था में सुधार तक कर पायेंगी जो सारे पयास की लीपापोती से अधिक नहीं। जबतक व्यवस्था और समाज Dominator और Dominated के बीच के संबंध स्पष्ट नहीं होंगे तब तक Cultural Violence और Culture of Sielence बनी ही रहेगी। अतः निरंतर आगे बढ़ते रहें।

उत्तर – आपने बिल्कुल ठीक लिखा है। मैं संविधान संशोधन का पक्षधर कभी नहीं रहा। मैं तो वर्तमान व्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन का हिमायती हूँ। इसीलिये मैने आप सबके साथ मिलकर तथा इतना कठिन श्रम करके भावी भारत का संविधान बनाया है। मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ कि शासन और शासित के बीच संबंधों की व्याख्या होनी चाहिये। आज स्थिति यह है कि शासक अपने अधिकारों की भी। सीमा स्वयं तय कर रहा है और समाज के अधिकारों तथा कर्तव्यों की भी व्यवस्था और समाज के बीच के संबंधों की व्याख्या तथा कार्यान्वयन एक पक्षीय हो रहा है द्विपक्षीय नहीं। बिल्कुल गुलामों के समान स्थिति है। अतः सारे काम छोड़कर एक दिशा में काम हो रहा है कि Dominator और Dominated के बीच की दूरी न्यूनतम हो जावे। तभी Violence और Sielence की संस्कृति पर कुठाराघात होगा और व्यवस्था बदलेगी। गीता में एक श्लोक है सर्व धमान् परित्यज्य, मामेकम् शरणं ब्रज। मैने इसे थोड़ा संशोधित करक याद कर लिया है कि सर्व कर्मान् परित्यज्य, लोक स्वराज्यं शरण ब्रज। स्वामी मुक्तानन्द जी को दिये गये मेरे उत्तर स भी यही स्पष्ट है कि मुझे मछली की आंख के अतिरिक्त कुछ और देखना लक्ष्यवेध से भटका सकता है।

स्वास्थ्य के कारण आप अब रामानुजगंज नहीं आ पा रहे इससे कुछ नुकसान होता है। किन्तु वहॉ बैठे बैठे आपके किये गये प्रयत्न आपके मन की तड़प को प्रकट करते हैं। आप सबका मार्ग दर्शन इसी तरह मिलता रहे तो पांच वर्षो में व्यवस्था परिवर्तन निश्चित है।

09. श्री राजेश टंडन, प्रिया समाचार, 42 तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली

यह बात बिल्कुल साफ हो चुकी है कि किसी देश को मिलने वाली बाहरी सहायता का वहॉ के विकास में विशेष महत्व नहीं होता। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि सरकार, निजीक्षेत्र तथा नागर समाज (मीडिया, बुद्धिजीवी वर्ग सहित)के अन्तर्गत ताकतवर, असरदार और जवाबदेह संस्थानों का होना बहुत जरूरी है तभी जनता के जीवन स्तर में सुधार के लिये कोई प्रासंगिक और टिकाउ काशिश की जा सकती है। मौजूदा संस्थागत ढांचे में निहित लालफीतासाही से बचने के लिये बहुत सारी अन्तर्राष्ट्रीय सहायता प्राप्त परियोजनाआ के लिए सरकार के ढांचे के भीतर और समुदाय के स्तर पर एक तात्कालिक परियोजना संरचना विकसित कर दी जाती है। परंतु क्याकि यह व्यवस्था केवल वक्त की होती हैं इसलिए परियोजना के पूरा होने के साथ साथ यह भी तेजी से खत्म हो जाती है। इसलिए विकास संबंधी सहायता को असरदार बनाने के लिए संस्थाओं का प्रभावी अभिशासन एक आवश्यक पूर्वशर्त है। दूसरे इस बात को रेखांकित किया जा चुका है कि विकासशील देशों में औपचारिक लोकतंत्र (नियमित चुनाव, बहुदलीय व्यवस्था, स्वतंत्र न्यायपालिका आदि) लाजिमी तौर पर नागरिकों की जरूरतों और उम्मीदों को संबोधित नहीं करता। इन संस्थाओं पर संगठित निहित स्वार्थो का "कब्जा" हो जाता है और

''बहुसंख्यक दृष्टिकोण'' का व्यवहार ''अल्पसंख्यक दृष्टिकोण'' वाले लोगों से अलग–थलग कर देता है। यहां उन कई सारे लोगों का तो सवाल ही नहीं है जो अब वोट डालने में बहुत दिलचस्पी नहीं लेते। निर्वाचित जनप्रतिनिधि संसद सदस्य और विधायक औपचारिक लोकतंत्र की इस व्यवस्था मे लगातार बइमानी होते जा रहे है। मिशाल के तौर पर ब्रिटेन, भारत और आस्ट्रेलिया जैसे देशो में कार्यपालिका के काम वैसे तो राजाध्यक्ष के नेतृत्व में संपन्न होते है परन्तु वास्तव में इन्ह एक विशाल नौकरशाही के जरिये कियान्वित किया जाता है। प्रमुख राष्ट्रीय फैसले जैस डब्ल्य0टी0ओ की संधियों पर हस्ताक्षर करना, सुरक्षा परिषद में वोट देना, आतंकवाद के खिलाफ युद्ध में हिस्सेदारी करना आदि कार्यपालिका के इस छोट से दायरे में ही किये जाते ह। संसद सदस्य और विधायको (जो खुद शासन पार्टी से है वे भी) की राय को जानने की भी कोई संजीदा कोशिश नहीं की जाती जिसकी वजह से उनमें से बहुत सारे राजनैतिक प्रक्रियाओं से अलगाव महसूस करने लगते है या फिर उन्ह अप्रासंगिकता का एहसास होता है। दूसरी तरफ मतदाता भी अपने जनप्रतिनिधियों की परवाह नही करते क्योंकि उन्हें लगता है कि असल ताकत कही और है जिनका कैरियर पेशेवर राजनीति से जुडा हुआ है। ऐसे चंद मुट्ठी भर नागरिकों के अलावा बाकी लोग जनप्रतिनिधि बनने में दिलचस्पी तक नहीं लेते। इसका नतीजा यह होता है कि नागरिको और उनके निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच बढ़ते फासले के चलते औपचारिक लोकतंत्र के सामने एक भारी चुनौती पैदा हो जा रही हैं। आज जरूरत इस बात की है कि नागरिको (जो सिर्फ मतदाता नहीं है) और उनके निर्वाचित प्रतिनिधियो के बीच में जीवंत और निरंतर चलने वाला मुद्दा आधारित संवाद स्थपित हो। यह संबंध लोकतंत्र के अभिशासन को काफी हद तक सुधार सकता है। इस संदर्भ में यह आशा पैदा होती है कि दुनिया के तकरीबन सौ देशों में स्थानीय अभिशासन के क्षेत्र में जो प्रयोग किये जा रहे हैं उनसे नई नई संभावनाए सामने आएगीं। स्थानीय निकाय पंचायते और नगरपालिकायें स्थानीय स्वशासन के ऐसे निकाय है जहा अभिशासन के नये–नये तौर तरीको और सिद्धांतो को आजमाया जा रहा हैं। राष्ट्रमंडल के कई देशों में इन निकायो को अभिशासन के स्थानीय जड़ों वाले संस्थाओं के रूप में प्रोत्साहित किया जा रहा है। हमारे देश में भी नवनिर्वाचित जनप्रतिनिधियों के रूप में महिलाये, दलित और सामाजिक रूप से दबे कुचले तबके और जितियों के लोग एक नये रास्ते पर बढ़ रहे है और इतिहास में पहली बार वे सार्वजनिक पहल पर अपनी भूमिकाये अख्तियार कर रहे है। परन्तु इस प्रक्रिया में उन्हे अपनी शारीरिक आवाजाही और सोचने के तरीको पर सदियो से लगाई गई बेड़ियो और बंधनो की रूकावटो को लांघने में भारी कठिनाईयों का सामना करना पड़ेगा। पंचायत और नगरपालिकाओं में स्थित ये स्थानीय सांसद और स्थानीय प्राथमिकताओं और संसाधनों के बारे में एक सचेत परिसंवाद में नागरिको को समाहित करने के लिए प्रयास कर रहे है। स्थानीय निकायों के निर्वाचित प्रतिनिधि, नागरिको के साथ एक प्रत्यक्ष संवाद स्थपित करने में सक्षम है। इसकी आंशिक वजह यह है कि वे नागरिको के साथ स्थानीय पैमाने पर रोज मिलते रहते है और मानसिक वजह यह है कि जनता के साथ उनके संबंधो में नौकरशाही का कोई दखल नही है। पीने का पानी, प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, साफ सफाई और आजीविका जैसे बुनियादी मुद्दो को संबोधित करने के लिए नागरिक संगठनो के स्थानीय निकायों में महिला निर्वाचित प्रतिनिधियों को सहायता दी जाती है। इन निर्वाचित महिलाओं द्वारा प्रभारी प्रतिनिधित्व के सकारात्मक अनुभवों से उनका सशक्तिकरण हो रहा है इससे वे देश में अभिशासन के और उंचे स्तरा पर अपनी सार्वजनिक भूमिकाओं को बढ़िया तरीके से निभा सकती है। नागरिको के लिए भी ये स्थनीय निकाय अभिशासन म हिस्सेदारी करने का एक सबसे ''नजदीकी मौका'' मुहैया करते है। अभिशासन में नागरिका की सहभागिता, बैठको में उनकी हिस्सेदारी, अपने दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति, मतभेदो को सुलझाने और स्थानीय योजनाओं की निगरानी की प्रक्रिया में हिस्सेदारो के रूप म व्यक्त होती है। स्थानीय निकायों के निर्वाचित प्रतिनिधियों के साथ आमने सामने संवाद के नय अवसरो से एक नया लोकतांत्रिक वातावरण विकसित हो रहा है इनमें न तो नागरिक अपनी जिम्मेदारियों से भाग सकते है और न निर्वाचित प्रतिनिधि हेरा फेरी कर सकते है। नागरिको और जनप्रतिनिधियों के बीच प्रत्यक्ष संवाद से नौकरशाही में भी जवाबदेही पैदा हो रही है क्याकि अब सरकारी कर्मचारियों में ''फूट डालो और राज करो'' की रणनीति जिसने नागरिको और उनके निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच एक गहरी और खतरनाक खाई पैदा कर दी है– पर भी अंकुश लग रहा है। अभिशासन में ये स्थानीय स्तर के अनुभव संभवतः कई दिलचस्प सिद्धांत, और तौर तरीके, पद्धतियां और साधन मुहैया करायेगें जिनमें राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर लोकतंत्र के प्रभावो अभिशासन में मदद मिल सकती है। वैश्विक अंतर्राष्ट्रीय निकायों (जैसे–संयुक्त राष्ट्र या राष्ट्रमंडल) के सुधार की चुनौती भी यही है कि लोकतंत्र के औपचारिक संस्थानों को कैसे सुधारा जाये जिससे अभिशासन की जिम्मेदारी नागरिको और उनके निर्वाचित जनप्रतिनिधियां की संयुक्त जिम्मेदारी बन जाये।

इसमें जनकी रूचि हो वे सामने आएं।

10. श्री उग्रनाथ नागरिक, अलीगंज, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

ज्ञान तत्व अंक 65 मिला। पूरा का पूरा पढ़ा। स्वीकार करता हूँ कि मै आप द्वारा परिभाषित ''तथा कथित धर्मनिरपेक्ष'' हूँ।

उत्तर –आपके इस वाक्य से ऐसा महसूस होता है कि ''तथाकथित धर्म निरपेक्ष'' शब्द से आपको कष्ट हुआ है। मेरा बिल्कुल भी ऐसा उद्देश्य नहीं था। मै आपके विचारा स लंबे समय से सम्पर्क में हूँ। किन्तु मुझे कभी ऐसा महसूस नहीं हुआ कि आप प्रतिबद्ध साहित्य की रचना करते है। मैं महसूस करता हूँ कि धर्म रिपेक्षता शब्द को वामपंथियों ने तथा तथाकथित धर्मनिरपेक्षता को दक्षिण पंथियों ने बंधक बनाकर उसका वास्तविक अर्थ और स्वरूप नष्ट कर दिया है किन्तु मैंने तथाकथित शब्द दक्षिण पंथियों से लेकर नहीं लिखा है।

मैंने पिछले अंक में साहित्य की दशा और दिशा विषय पर जो भो लिखा है उस पर नाराजगी के स्थान पर गंभोर तर्कपूर्ण उत्तर की प्रतिक्षा थी। मुझे प्रसन्नता होती यदि किसी गंभीर प्रश्न से यह बात और आगे बढ़कर मंथन का स्वरूप ले पाती। आप जैसे गंभीर व्यक्तित्व स तो और भी अधिक अपेक्षा थी। आशा है कि आप मेरी भावना को समझेंगे और मंथन प्रक्रिया को बढ़ाने में सहयोग करते हुये अपने मन को पहुँचे कष्ट के लिए मुझे क्षमा करेंगे।

11. श्री रवीन्द्र सिंह तोमर, संवाद सरोवर गुना, मध्यप्रदेश

अक 65 मिला। चंद्रशेखर धर्माधिकारी के लेख और आपके विचारों से ऐसा लगता है कि मुसलमान आजादी के बाद भारत में सौतेले बेटे की तरह हो गये है।

आपने साहित्य पर अपनी कलम चलाते हुए लिखा कि साहित्य अंधा है ओर विचार लंगड़ा यह सही नही लगा। सच यह है कि साहित्य प्रेम ही व्यक्ति में चिन्तनशीलता पैदा करता है। मैं मानता हूँ कि साहित्यकार विचारों का संवाहक हो सकता है, उस पर दबाव भी हो सकते है किन्तु इससे साहित्य के महत्व को कम करके देखना उचित प्रतीत नहीं होता है। स्वतंत्र और संघर्षशील साहित्य समाज में चेतना पैदा करके संस्कृति को जीवन्तता प्रदान करती है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ साहित्य प्रेम बढ़न का अवसर नहीं देता। जबकि वामपंथ साहित्य प्रमियों के साथ सामंजस्य करता है। संघ को इस दिशा में सोचना चाहिये।

12. श्री आनन्द बिल्थारे, बालाघाट, मध्यप्रदेश

आपने साहित्य की दशा और दिशा पर बहुत गंभीर और सामयिक विचार प्रस्तुत किये। मैं चाहता हूँ कि इस संबंध में कछ और विस्तृत लेख आना चाहिये। आशा है कि आप कभी समय पाकर प्रयास करेंगे।

उत्तर – इस संबंध में विस्तृत लेख इसी अंक में ''दो पाटों के बीच में '' शीर्षक से जा रहा है। श्री रवीन्द्र सिंह तोमर जी ने भी नाराजगी व्यक्त की है। उन्होंने चन्द्रशेखर जी धर्माधिकारी जैसे गंभीर विचारक के विचारों का तर्कसंगत उत्तर न देकर बचकाना या आक्रोश भरा उत्तर दिया। मुसलमानों को भरत में सौतेले भाई के समान देखा जा रहा है किन्तु यदि भारत में किसी भी धर्म के धार्मिक मान्यताओं में शासन का कोई हस्तक्षेप न हो ऐसी समान नागरिक संहिता लागू हो तो इसमें कौन सा सौतेला व्यवहार हो गया। आपके विचारा से ऐसा लगता है कि आप किसी ऐसे संगठन के सदस्य है अथवा प्रतिबद्ध है जो समाज को हिन्दू और मुसलमान दो वर्गो में बाटकर मुसलमानो की चापलूसी करने पर तुला हआ है। चंद्रशेखर जी धर्माधिकारी तथा म, दोना ही संघ से दूर दूर तक संबंध नहीं रखते। दोनो किसी भी संगठन के सदस्य नही है। किसी संस्था के सदस्य हो सकते है। हम दोना ही समाज को धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, उम्र, आर्थिक स्थिति तथा लिंग के आधार पर बांटना, वर्ग विद्वश फैलाना तथा वर्ग संघर्ष की ओर ढकेलने के घोर विरोधी है। हम मानते है कि व्यक्ति, परिवार, गॉव तथा उपर जाते जाते राष्ट्र एक इकाई है जिनका अलग अलग भी अस्तित्व है और एक साथ भी। दोना की पृथक पृथक अस्तित्व की सीमाएं है जिनका पालन करना आवश्यक है। धर्म या तो व्यक्तिगत इकाई का सीमा क्षेत्र है अथवा पारिवारिक इकाई का। हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि राष्ट भी एक इकाई है तथा उसके भी कुछ ऐसे अधिकार या दायित्व है जिनमें व्यक्ति या परिवार हस्तक्षेप नहीं कर सकता। यदि कोई संगठन अपनी मान्यताओं को अंतिम मान ले, व्यक्ति परिवार और गॉव से ही नहीं, राष्ट्र से हटकर हो तो उस व्यक्ति या संगठन को वैसी छूट नहीं दी जा सकती। यह बात पूरी तरह निर्विवाद है कि इस्लाम और संघ संगठन है। इन दोनो के अपनी सीमाओं से बाहर जाकर हस्तक्षेप के प्रयासों को कानूनी प्रतिबंध लगाना ही चाहिये। कोई महिला स्वयं को मुसलमान कहती है। और बुरका नहीं पहनती यह उसका व्यक्तिगत अधिकार है। आप चाहे तो उसे अपने संगठन से निकाल सकते है किन्तु आप उस पर अपना सागठनिक निर्णय थोप नही सकते। यदि इस्लाम ने ऐसी इजाजत दी भी हो ता राष्ट्र को ऐसी इजाजत पर रोक लगाने का पूरा अधिकार है।

आप साहित्यकार है। आपको साहित्य के महत्व की भी चिन्ता है। साथ ही आप साहित्य की स्ववंत्रता आर संघर्षशीलता के भी हामी है। जो व्यक्ति किसी संगठन का सदस्य हो, हिन्दू और संघ का अंतर न समझता हो, समान नागरिक संहिता का विरोध करते हुये भी स्वयं को धर्म निरपेक्ष घोषित करता हो वह कैसा स्वतंत्र साहित्यकार है यह मैं नही समझ पा रहा। मैने लीक से हटकर उत्तर दिया है। मेरा उद्दश्य आपको कष्ट पहुचाना नहीं है। मैं तो सिर्फ यह चाहता हूँ कि आप या अन्य प्रतिबद्ध साहित्यकार मेरे लेख पर कुछ गंभीर बहस छेड़े जिससे मंथन प्रक्रिया और आगे बढ़ सके।

13. श्री राम अवधेश मिश्र, बरेली, उत्तर प्रदश।

गुजरात म गोधरा कांड के बाद दंगे हुए। संघ परिवार ने गोधरा में हुई घटना का भरपूर लाभ उठाया। गोधरा कांड के कारण ही गुजरात में भाजपा पुनः सत्ता में आ गई। जो कुछ हुआ वह प्रजातंत्र का विकृत रूप था फिर भी प्रजातंत्र की समाप्ति नहीं थी। बेस्ट बेकरी कांड के अभियुक्तों का न्यायालय से निर्दोष निकलना तो प्रजातंत्र की समाप्ति के समान है। यदि यह प्रमाणित हो जावे कि गवाहों न भय वश बयान बदले है तो भी अपराधियों को दण्ड मिलना अब संभव नहीं दिखना लोकतंत्र की समाप्ति ही मानी जानी चाहिये। पूरे भारत में इस बेस्ट बेकरी कांड के अभियुक्तों के निर्दोष छूटने से एक बहस शुरू हुई कि न्याय और कानून के बीच लगातार बढ रही दूरी को कसे कम किया जाय। जिन लोगों ने यह मुद्दा उठाया है वे बधाई के पात्र है। धर्म निरपेक्षाता को जीवित रखने के लिये बेस्ट बेकरी कांड के अभियुक्तों के विरूद्ध अपील भी होनी चाहिये और उन्ह सजा भी मिलनी चाहिये। आपकी इस में क्या राय है तथा आप इसमें क्या सहयोग कर सकते है ?

उत्तर – मैं आपके कथन से पूरी तरह सहमत हूँ कि बेस्ट बेकरी काड के अभियुक्तों का निर्दोष छूटना प्रजातंत्र की समाप्ति के समान है। प्रजातंत्र को बचाना है तो न्याय और कानून के बीच की बढ़ती दूरी को कम करना आवश्यक है किन्तु मैं आपकी अन्तिम चार लाइनो से सहमत नहीं जिसमें आपने बेस्ट बेकरी का मुद्दा उठाने वालों को बधाई देने, अपील करने तथा धर्म निरपेक्षता को जीवित रखने हेतु बेस्ट बेकरी कांड के अभियुक्तों को सजा दिलाने में सहयोग की बात है। एक सच्ची घटना से यह बात और स्पष्ट होगी। मेरी मां के गले म दर्द हुआ। मैंने एक दो डाक्टरा को दिखाया तो ठीक नहीं हुआ। हमारे ही शहर के एक मित्र ने आकर हमें बाहर न दिखाकर कुछ दिनों तक तीसरे डाक्टर के इलाज करने की बहुत सलाह दी। किन्तु मैं नहीं माना और पटना गया तो पता चला कि मॉ को पेट में पथरी है। पथरो का आपरेशन हुआ और माँ ठीक हो गई। पता चला कि मॉ के प्रति दया दिखाने वाला मित्र वास्तव में एक गले वाले डाक्टर का पेशेवर एजेन्ट था जो कमीशन पर ऐसा किया करता था। मैने धीरे से मित्र से किनारा किया।

बेस्ट बेकरी का मुद्दा जोर शोर से उठाने का कार्य वामपंथी एवं तथाकथित धर्म निरपेक्षों के प्रयास का परिणाम है। पूरे भारत में वर्षो से ऐसी घटनाएँ हो रही हैं जब अपराधियों के भय से गवाह गवाही बदलते हैं और अपराधी निर्दोष छूटते हैं। किसी भी शहर के किसी भी स्थापित गुण्डे के पीछे का इतिहास यही मिलगा। बेस्ट बेकरी कांड में न्यायालय मे जो कुछ हुआ वह कोई घटना नहीं है। बल्कि एक प्रणाली है जो भारत में न्याय और कानून के बीच की दूरी का परिणाम है न कि गुजरात में हुआ कोई षडयंत्र। यह पूरे भरत में लाखों ऐसे लोग हैं जो कई कई डकैती और हत्या जैसे अपराधों को करने के बाद भी न्यायालय से निर्दोष सिद्ध होकर घूम रहे हैं। मैंने लाखों शब्द बहुत गंभीरता से लिखा है जो अतिश्योक्ति नहीं है। भारत में अनेक सामूहिक घटनाएँ भी हो चुकी ह जिसमें अपराधी डरा धमकाकर न्यायालय से निर्दोष छूट गये किन्तु कभी मामला इतनी गंभीरता से नहीं उठा। क्या हम यह मान ल कि इस बार गुजरात कांड कुछ इसलिये विशेष है कि पूर्व में हुए ऐसे प्रकरण या तो नितान्त आपराधिक थे अथवा वामपंथ पोषित। किसी भी मामले में कभी ऐसा नहीं हुआ था जिसमें पेशेवर धर्म निरपेक्ष पोषित लोग पीडित पक्ष के हों जिन्हें दक्षिणपंथी कट्टरपंथी हिन्दुओं ने अपराध करके अपनी स्वयं की तथा अपनी राज्य सरकार की शक्ति के बल पर न्याय का गला घोंटकर साफ बच निकले हों। न्याय का गला तो लंबे समय से घुट रहा है, किन्त अब बेस्ट बेकरी घटना के कारण इनके गले से आवाज निकलनी शुरू हुई है। मेरे विचार में हल्ला करने वाले बधाई के पात्र नहीं है बल्कि उनकी पोल खुल गई है कि वे पूरी तरह सजग हैं, सक्रिय हैं। भारत में जब और जहॉ भी उनके द्वारा घोषित धर्मनिरपेक्षता को चोट पहुचेगी ये पूरे देश में एक साथ आवाज उठाकर वातावरण बना सकते ह।

बेस्ट बेकरी प्रकरण की अपील हो या नही अथवा अपराधियों को सजा मिल या न मिले, इससे मेरा न कोई संबंध है न सक्रियता। मैं तो बेस्ट बेकरी प्रकरण के सामने आने से इसलिये प्रसन्न हूँ कि अब न्याय और कानून के बीच की दूरी पर देश का ध्यान गया है और कोई न कोई मार्ग निकलेगा। मुझे दुख है कि इतना स्पष्ट और महत्वपूर्ण उदाहरण सामने होते हुए भी बहस इस बात पर नहीं हो रही कि न्याय प्रणाली में क्या बदलाव हो कि पूरे देश में अपराधी भय पैदा करके निर्दोष सिद्ध न हो सकें। बल्कि बहस इस बात पर हो रही है कि बेस्ट बेकरी क अभियुक्तों को सजा कैसे मिले। इतनी महत्वपूर्ण सामाजिक कमजोरो राजनैतिक स्वरूप ग्रहण कर रही है। अब भारत के दक्षिणपंथी अपने गुजराती साथियों के पक्ष में आवाज उठायेंगे कि इसमें हस्तक्षेप स न्यायपालिका का गला घुट जायेगा। वे यह भ्ल जायेंगे कि पूरे भारत में यह एक बहुत बडो समस्या है और इसका इलाज आवश्यक है। कुछ लोगो ने ऐसी आवाज भी लगानी शुरू कर दी है। यह और भी खतरनाक होगा कि बेस्ट बेकरी प्रकरण किसी ठीक दिशा में सोच म सहायक बनने के

स्थान पर हिन्दू, मुसलमान, वामपंथी दक्षिणपंथी अथवा गुजरात सरकार बनाम अन्य सरकारों के बीच टकराव का रूप ल ले अन्यथा मुझ डर है कि पेशेवर संस्थाओं के विवाद में यह राष्टोय मुद्दा लंबे समय के लिये दफन हाकर यह कहावत छोड़ जायेगा कि ''दो भैंसो की लड़ाई में और कुछ हो या न हो किन्तु खेती तो बर्बाद होती ही है''।

14. श्री विनय भाई, 15/239 सिविल लाइन्स , कानपुर 208001

आपका पत्र मिला। आपका व्यवस्था परिवर्तन की एक सूत्रीय योजना पर काम कर रहे हैं किन्तु मेरा ऐसा मानना है कि जीवन मूल्यों में परिवर्तन किये बिना व्यवस्था परिवर्तन की बात का कोई लाभ नहीं होगा। आज आत्मिक, सत्य, हार्दिक स्नेह तथा शारीरिक श्रम क मूलभूत मानव मूल्यों की उपेक्षा के दुष्परिणाम हम भुगत रहे हैं। चालीस प्रतिशत गरीबी, होते हुए भी बीस प्रतिशत मूल्यहीन लोगों की नकल में हमारी स्वतंत्रता और संस्कृति नष्ट हो रही है। हम व्यापक क्षेत्र में लोक शिक्षण में अपनी अधिकांश शक्ति लगाते है किन्तु स्थानीय स्तर पर ग्राम सभा तथा मुहल्ला सभा नहीं बनाते तो व्यापक स्तर पर रचना और संघर्ष में ग्राम के लोगों की भागीदारी नही होगी। अतः व्यवस्था परिवर्तन के स्थान पर निर्माण में शक्ति लगनी चाहिये। स्वास्थ्य की खराबी के कारण अगस्त सम्मेलन में आना नहीं हो सकेगा।

15,श्री रामजी सिंह जी, भीखनपुर, भागलपुर, बिहार

अगस्त दो तीन चार को व्यवस्था परिवर्तन में लोक स्वराज्य की भूमिका विषय पर गंभीर विचार मंथन में आने का आमंत्रण मिला। मैं पत्नी की बीमारी के कारण नहीं आ सकूगा।

एक बात मेरी सलाह के रूप में है कि विचार मंथन बहुत हो चुका है। अब तो दो चार गॉवों में बैठकर वहॉ से शुरूआत हो तो अच्छा हो। आशा है कि आप ध्यान देंगे।

उत्तर :—क्रिया और विचार एक दूसरे के पूरक ह। क्रिया हीन विचार मंथन तथा विचार मंथन हीन सक्रियता, ये दोनों ही घातक परिणाम देते है। व्यक्तिगत मामलों में प्रत्येक व्यक्ति के पास दोंनो भूमिकाओं का समन्वय होना चाहिये तथा समाज निर्माण के मामलों में संयुक्त रूप से दोंनो भूमिकाओं का समन्वय होना आवश्यक है। गांधी जी दोनों का पूरा पूरा समन्वय करके चलते थे। विनाबा जी के समय तक कुछ सीमा तक ऐसा समन्वय रहा किन्तु विनोबा जी के बाद तो पलड़ा एकपक्षीय क्रिया के पक्ष में झुकता चला गया। योजनाओं पर बहुत चचा हुई किन्तु मंथन लुप्त हो गया। परिणाम एकांगो ही होना था और वही हुआ। आप दोनों मित्रों ने पूरे जीवन भर सक्रिय रहकर जिन गॉवों का निर्माण किया है उस संबंध में जानकारी के अभाव में मैं कुछ नहीं कह पा रहा किन्तु इतना मुझे विश्वास है कि आपके अथक और ईमानदार प्रयास के बाद भी गॉव निर्माण की योजना कुछ गॉवों से आगे नहीं बढ़ पाइ होगी।

व्यवस्था और चरित्र एक दूसरे के पूरक होते हैं। सन सैंतालोस की राष्ट्रीय स्वतंत्रता को ही पूर्ण स्वतंत्रता मानकर अपने मित्रों ने व्यवस्था के विषय में सोचना बंद कर दिया तथा समाज निर्माण की दिशा में एक पक्षीय सक्रियता हो गई। राजनेता भी यही चाहते थे कि वे निर्बाध गति से काम करते रहें। कोई टोका टाकी न हो। बल्कि भारत की राजनीतिक व्यवस्था ने तो चरित्र निर्माण तथा समाज निर्माण के कार्य को अपने लिये सहायक मानकर कुछ न कुछ राजकीय सहायता भी दी। विनोबा जी ने आचार्य कुल बनाकर कुछ विचारकों की एक टीम बनाने का प्रयास किया किन्तु वह भी विचार मंथन की अपेक्षा सक्रियता को ही महत्व देने लगा जयप्रकाश जी ने व्यवस्था को प्रत्यक्ष कटघरे में खड़ा करना चाहा किन्तु व्यवस्था पर आक्रमण न होकर सत्ता तक सीमित रह गया। विचार मंथन विहीन क्रिया का दुष्परिणाम ही है कि पचास वर्षो के अथक परिश्रम के बाद भी संपूर्ण भारत के प्रत्येक व्यक्ति का चरित्र पतन हुआ है। इसके तीन प्रमुख कारण है :—

1, राष्ट्रीय स्वतंत्रता को ही स्वराज्य मान लिया गया जबकि यह तो सिर्फ पहली सीढ़ी मात्र थी। दूसरी सीढ़ी ग्राम स्वराज्य तथा तीसरी लोक स्वराज्य की दिशा में पहल नहों हुई।
02, चरित्र निर्माण तथा समाज निर्माण का लक्ष्य कभी आगे नहीं बढ़ सकता यदि व्यवस्था दोषपूर्ण है क्योंकि व्यवस्था का समाज और चरित्र पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। इस सत्य को छोड़कर चलने का प्रयास किया गया।
03, किसी भी कार्य के परिणामों की समीक्षा भी होते रहनी चाहिये। विशेष रूप से ऐसी समीक्षा तब और भी आवश्यक होती है जब कार्य के परिणाम निरंतर विपरीत आ रहे हों।

पचास वर्षो में चोरी डकैती, मिलावट, आतंक, दादागिरी, भ्रष्टाचार, चरित्रपतन, साम्प्रदायिकता, आर्थिक असमानता, श्रमशोषण, जातीय टकराव निरंतर बढ़े भी हैं और बढ़ भी रहे हैं। क्या इसके लिये वर्तमान व्यवस्था दोषी नहीं ? क्या हमें दस बीस वर्ष पूर्व ही विपरीत परिणामों की समीक्षा नहीं करने चाहिये थी? बीमारी के मूल कारणों का समाधान किये बिना सिर्फ ताकतवर भोजन ही शक्ति के लिये पर्याप्त नहीं होता। ''वर्तमान व्यवस्था पूरी तरह शरीफों, गरीबों तथा श्रमजीवियों के शोषण के उद्देश्य से अपराधियों, पूॅजीपतियों तथा बुद्धिजोवियों का योजनाबद्ध षडयंत्र है। हम आप भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से यथास्थिति को मजबूत करने में सहयोगी ह। यथास्थिति को तोड़ने हेतु संपूर्ण भारत में एक सकिय वैचारिक बहस छिड़नी चाहिये''। मेरा मानना है कि आज ऐसे मंथन की अतीत्व आवश्यकता है किन्तु आप विद्धान गण ऐसे विचार मंथन, समीक्षा तथा आत्मावलोकन के ही विरूद्ध हैं। मैं आपसे ऐसा कोई निवेदन नहीं कर रहा कि आप अपना महत्वपूर्ण चरित्र निर्माण तथा ग्राम निर्माण का काम बन्द कर दें या कम कर दें। मेरा तो आपसे सिर्फ इतना ही निवेदन है कि यदि आपके काम को कोई गंभीर क्षति न हो ता एक बार इस दिशा में भी सोंचे अथवा कम से कम हमें निरूत्साहित न करें। सभी जानते ह कि हृदय परिवर्तन तथा ग्राम निर्माण ही स्थायी समाधान है और नई व्यवस्था में हमें भी वही करना है किन्तु व्यवस्था द्वारा विपरीत कार्य करने से हम पूरी ताकत लगाकर भी परिणाम नहीं पर सकते। अतः पहले इस बीमारी को ठीक करने की दिशा में विचार मंथन करक हम व्यवस्था परिवर्तन की लीक पर इस तरह चलना चाहते है कि वर्तमान व्यवस्था के विकल्प के रूप में लोक स्वराज्य प्रणाली स्थापित हो सके। गांधी जी के सामने भी कई बार एसे प्रसंग आये जब अनेक प्रबुद्ध जनों ने उन्हें चरित्र निर्माण तथा ग्राम निर्माण को प्राथमिकता देने की बात कही। तक दिया गया कि अंग्रेजो के जाने से ही क्या होगा यदि हम अपनी व्यवस्था खुद करने लायक नहीं रहे। कुछ लोग तो अब भी कहते हैं कि बिना पूरी तैयारी के स्वतंत्रता लेने के दुष्परिणाम आज दिख रहे हैं किन्तु गांधी जी ने कभी ऐसे बाता पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि अंग्रेजो का तत्काल भारत छोड़ना हमारा पहला आंदोलन है तथा चरित्र निर्माण दूसरा। पहले को छोड़कर दूसरे का कोई महत्व नहीं है क्योंकि गुलाम व्यक्ति का अपना कोई स्वतंत्र चरित्र नहीं होता है। आज भो हमें गुलाम मानसिकता से मुक्ति पाने क प्रयास को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिये तथा आशा है कि इस दिशा में आपकी सक्रियता हमारी सहायता करेगी।

16. श्री बहादुर सिंह यादव, बदायू, उत्तर प्रदेश।

आपने कृत्रिम ऊर्जा को भारी मूल्यवृद्धि प्रस्तावित की है। इससे आवागमन महंगा होगा। आवागमन महंगा होने से किसानों का कृषि उत्पादन बाजार तक नहीं पहुच सकेगा। इससे किसानां को क्षति संभावित है या नहीं?

उत्तर– यह प्रश्न आर भी कई साथियों ने पूछा है। कृत्रिम ऊर्जा की भारी मूल्य वृद्धि के साथ कृषि उत्पादों पर लगने वाले सभी प्रकार के कर समाप्त करने का भी प्रस्ताव है। इस प्रस्ताव से कृषि उत्पाद का विक्रय मूल्य बढ़ेगा नहीं। किन्तु यह बात सही है कि आवागमन व्यय बढ़ने से बाहर से आने वाले उत्पादन तथा स्थानीय उत्पादन के बीच मूल्यों की प्रतिस्पर्धा में स्थानीय उत्पादन अधिक मजबूत होंगे। भारत के आधे किसान ऐसे ह जो अपने घरेलू उपयाग की वस्तुएॅ ही पैदा करते है तथा बहुत कम बेच पाते है। इनके उत्पादन पर आवागमन व्यय बढ़ने का कोई असर नहीं होगा। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जो किसी वस्तु का विपुल उत्पादन करके निर्यात करते है तथा कुछ अन्य वस्तुएॅ आयात करते हैं। आवागमन व्यय बढ़ने से आयातित वस्तुओं की मूल्य वृद्धि होने से वैसी वस्तुओं का स्थानीय उत्पादन प्रोत्साहित होगा तथा निर्यात वाला उत्पादन निरूत्साहित होगा। इससे कुछ तो खेती की प्राथमिकताएॅ प्रभावित होगी और कुछ उपभोक्ताओं की रूचि भी प्रभावित होगी। यदि आयात निर्यात प्रभावित होगा तो स्थानीय किसानों पर इसका कोई बुरा प्रभाव नहीं होगा।

अभी हमारे क्षेत्र में हरियाणा से गेहूॅ आकर यहॉ के किसानो के उत्पादन का प्रभावित करता है। यदि वह गेहूॅ महंगा हो जाय तो स्वाभविक है कि हरियाणा के किसान पर गेहू के मामले में बुरा प्रभाव पड़ेगा किन्तु छत्तीसगढ़ के किसान पर गेहूॅ के मामले में अच्छा असर पड़ेगा। कुल मिलाकर किसान न लाभ में रहेगा न हानि में। फिर भी यदि आप मानते हैं घाटे में रहें और स्थानीय रोजगार बढ़ जावे तो अच्छी ही बात होगी। अब स्थानीय उत्पादन बड़े शहरां में जाकर परिष्कृत होने तथा पका माल बनकर फिर वही आने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगेगा जो समाज के लिये हितकर होगा।

17.श्री रामेश्वर दयाल सक्सेना, अमरावती, महाराष्ट्र।

ज्ञान तत्व में आपने साहित्य की दशा और दिशा में लिखते हुए वामपंथ और राष्ट्रवादियों को एक ही तराजू पर तोलने का प्रयास किया है जबकि सभी जानते है कि वामपंथियों ने स्वतंत्रता के समय भी देश के साथ गद्दारी की और स्वतंत्रता के बाद भी। वामपंथी न कभी समाज के अपने हुए हैं न राष्ट्र के। वामपंथी ऐसे ढ़ागी धर्मनिरपेक्ष होते है कि मंदिर में प्रवेश करते समय तो भगवान के सामने हाथ जोड़ने को दकियानूसी कार्य कहकर मजाक उड़ाते हैं किन्तु मुसलमानों के बीच कभी उनकी खिल्ली न उड़ाकर शालीन व्यवहार की दुहाई देते हैं। इनमें देश प्रेम तो कभी रहा ही नहीं। अतः आप जैसे प्रबुद्ध और तटस्थ विचारक को अपनी तटस्थता बचाये रखने के लिये सत्य का गला घोटना ठीक नहीं था।

उत्तर– वामपंथियों ने स्वयं को राष्ट्र की सीमाओं में कभी बांध कर नहीं रखा इसमें गलत क्या है? मेरे विचार में तटस्थ विचारकों को किसी ऐसी सीमा में बंधना भी नहीं चाहिये। न्याय और अपनत्व के बीच यदि टकराव हो अथात् अपनत्व न्याय का गला घोटने लगे तो दक्षिणपंथी राष्ट्र के पक्ष में हो जाते हैं जिसे मैं राष्टवाद का निष्कृष्ट स्वरूप मानता हूॅ। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता अनुसार सैद्धांतिक दायित्व उठाना चाहिये। यदि आप राष्ट्र तक के विषय में सोचने और निष्कर्ष निकालने की क्षमता नहीं रखते हैं तो आप ऐसे
निष्कर्ष निकालने वालों के निष्कर्ष पर आचरण करने को बाध्य हैं किन्तु यदि आप ऐसे गंभीर मामलों में भी दखल देते है तथा आपका हस्तक्षेप न्याय से हटकर राष्ट्र की ओर झुका हुआ है तो वह पूरी तरह गलत है। आप जैसे दक्षिण पंथियां ने राष्ट शब्द पर ऐसा अधिकार कर लिया है कि आप सबने धीरे धीरे राष्ट्र शब्द को महिमा मंडित करत करते समाज से भी उपर उठा दिया। अब भारत में किसी भी साधारण से साधारण या बड़े से बड़े व्यक्ति से भी समाज और राष्ट्र की तुलना मे राष्ट्र को बड़ा और महत्वपूर्ण मानने की परिपाटी सी चल पड़ी है जबकि समाज राष्ट्र से बड़ा होता है, बहुत बड़ा होता है। समाज में दुनिया के वे सभी व्यक्ति शामिल हैं जो समाज विरोधी नहीं हैं जबकि राष्ट्र में उस राष्ट्र के ही व्यक्ति माने जाते हैं, राष्ट्र के बाहर के नहों मैने उक्त लेख या उसके बाद के लेख में जो आरोप लगायें है। उसके कुछ छींटे तो दक्षिण पंथियों पर भी है। आप वामपंथियों पर कीचड़ उछालने की अपेक्षा अपने छींटे धोने के प्रयास में कुछ लिखते तो सत्य समाज के समक्ष आने में अधिक सहायता होती। अब तक आप लोगों में वाम पंथ और दक्षिण पंथ में बटकर तथा एक दूसरे पर आरोप प्रत्यारोप का नाटक खडा करके पहल अपने हाथ में ले रखी है। किन्तु आप लोगो को तटस्थ, धर्म निरपेक्ष, समाजवादी विचारों की चुनौती हैं। भागने से भी काम नहीं चलेगा और कतरानें से भी नहीं चलेगा। यदि आपके कथन में कोई तर्क है तो अपने तर्क प्रस्तुत करिये अन्यथा अपना यह नाटक बंद करिये यही समाज, धर्म, राष्ट्र सबकी आवाज है।

समाप्त